



आत्मनिरीक्षण एवं सशक्तिकरण: यम नियम के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. मंजू शुक्ला

एन. आई. टी. रायपुर, छत्तीसगढ़

ABSTRACT

मनुष्य इस सृष्टि विकास के क्रम में सर्वोत्कृष्ट कृति है शारीरिक दृष्टि से भी एवं मानसिक दृष्टि से भी। शारीरिक संरचना की दृष्टि से जहां उसकी रीढ़ उर्ध्वमुखी हो सकी ताकि उसमें बहने वाली प्राणिक उर्जा (चेतना) भी उर्ध्वगामी हो सक।

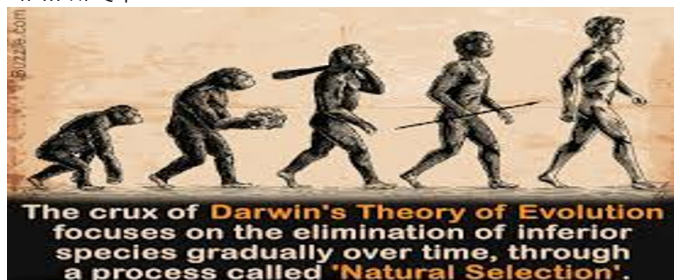
वहीं मानसिक रूप से मनस या विचार करने की क्षमता एवं उसको क्रियान्वित करने की क्षमता का विकास हुआ। ओशो कहते हैं कि हम मनुष्य इसलिये ही बन सके क्योंकि हमारी रीढ़ आड़ी (—) न होकर खड़ी (।) हो गई। सोचने और क्रियान्वित करने की क्षमता के कारण हमने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में बहुत विकास किया जिसका उद्देश्य मानव जीवन को सरल और आनंददायक बनाने के साथ-साथ ब्रम्हांडीय घटनाओं को समझना है वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हम सुविधा सम्पन्न तो हुये पर शांति और स्थिरता कहीं दिखाई नहीं देती। क्योंकि मानवीय अस्तित्व, उसके चेतना विकास एवं नैतिक विकास के लिये आवश्यक प्रयास नहीं किये गये। हमारी भारतीय संस्कृति विशेषकर योग संस्कृति मानवीय व्यवहार, स्वस्थ एवं सुखी जीवन के लक्ष्य के साथ साथ मानव चेतना के विकास का अद्भूत मार्ग भी प्रदान करती है। यदि हम विज्ञान, प्रौद्योगिकी और चेतना विकास पर एक साथ ध्यान केंद्रित करें तो हम निश्चित रूप से एक सुखी और समृद्ध जीवन प्राप्त कर सकते हैं।

शब्द कुंजी- यम, नियम, चेतना, सुविधा, मूल्य, आत्म-निरीक्षण

मनुष्य इस सृष्टि विकास के क्रम में सर्वोत्कृष्ट कृति है शारीरिक दृष्टि से भी एवं मानसिक दृष्टि से भी। शारीरिक संरचना की दृष्टि से जहां उसकी रीढ़ उर्ध्वमुखी हो सकी ताकि उसमें बहने वाली प्राणिक उर्जा (चेतना) भी उर्ध्वगामी हो सके।

वहीं मानसिक रूप से मनस या विचार करने की क्षमता एवं उसको क्रियान्वित करने की क्षमता का विकास हुआ। ओशो कहते हैं कि हम मनुष्य इसलिये ही बन सके क्योंकि हमारी रीढ़ आड़ी (—) न होकर खड़ी (।) हो गई।

जड़ से लेकर मनुष्य बनने तक की पूर्ण प्रक्रिया यदि डार्विन के अनुसार देखें तो भी मनुष्य बनने तक की प्रक्रिया में रीढ़ का सीधा होना स्पष्ट दिखता है। यद्यपि डार्विन का पूर्ण सिद्धांत 'जीवन संघर्ष एवं अस्तित्व संघर्ष के लिये शरीर संरचना में परिवर्तन के विकास पर आधारित है।



विश्व में चेतना की धारणा के विकास की विभिन्न अवस्थाओं पर

व्यवस्थात्मक विमर्श का सम्भवतः प्रथम निश्चित प्रयास एतरेय आरण्यक में उपलब्ध होता है। 'जगत में झाड़ियां हैं, वृक्ष हैं और पशु हैं और वह आत्मा को उन सब में कमशः विकसित होते हुये देखता है। क्योंकि झाड़ियों तथा वृक्षों में केवल 'जीवन रस' देखा जाता है, किंतु सजीव प्राणियों में चित्त का अस्तित्व भी है। सजीव प्राणियों में आत्मा कमशः विकसित होता है और मानव में पुनः आत्मा का विकास कमशः होता है क्योंकि वह प्रज्ञा से सर्वाधिक संपन्न है।

पर इस प्रज्ञा से संपन्न विशिष्ट क्षमता के बावजूद उसमें 'मानव' होने के गुण दिखाई नहीं देते। क्योंकि शारीरिक केंद्रीकरण एवं सुखी होने के लिये अधिकतम सुविधाओं का संग्रह ही जीवन का उद्देश्य है। परिवार, समाज, शिक्षा प्रणाली, विज्ञापन सभी का उद्देश्य शरीर सापेक्ष दिखाई देता है पद, पावर, धन, बल प्राप्त करना ही लक्ष्य है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में चार्वाक दर्शन की यह उक्ति पूर्णतः सटीक दिखाई देती है—

यत्जीवेत सुखंजीवेत ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत।

निश्चित रूप से सुख की प्राप्ति मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। पर मात्र भौतिक सम्पन्नता या प्रौद्योगिकीय विकास हमें आनंदपूर्ण, शांतिपूर्ण, प्रेमपूर्ण और करुणापूर्ण नहीं बना सकते। साथ में चेतना का विकास भी नितांत आवश्यक है। अर्थात् शारीरिक एवं मानसिक

दोनों स्तर पर संतुलित होना आवश्यक है। वास्तव में प्रकृति पुरुष, जड़ चेतन, अनात्म आत्म, अनित्य नित्य, जैसे शब्द 'मानव अस्तित्व' के दो भिन्न पहलुओं को इंगित करते हैं।

एक पक्ष जो भौतिक है, सीमित है, जिसका निश्चित भार (weight) है माप है, जिन्हें छुआ, देखा जा सकता है। जैसे शरीर एवं उससे जुड़ी हर आवश्यकताएं— भोजन, वस्त्र, घर—मकान, आवागमन के साधन अर्थात् संपूर्ण पदार्थ जगत जिनका चित्रण (Imagination) किया जा सकता है।

दूसरा पक्ष जो शाश्वत भारहीन, चैतन्य ईकाइ है जिसे सिर्फ अनुभव किया जा सकता है। इसकी आवश्यकताएं 'मूल्य' हैं जैसे प्रेम, करुणा, स्नेह, सम्मान, त्याग, दया, आदि जिनका चिंतन (Contemplation) होता है एवं अनुभव किया जा सकता है। जिन्हें हमने ईश्वरत्व का स्थान दिया वे इन्हीं मूल्यों से पूरित हैं मानव चेतना का विकास इन्हीं मूल्यों का विकसित होना है।

पर वर्तमान समाज का मूल्यांकन करें तो सारा दृष्टिकोण शरीर सापेक्ष दिखाई देता है। पतंजलि योगसूत्र में वर्णित 'अष्टांग योग' योग के क्षेत्र में विशिष्ट महत्व रखता है इसका प्रथम एवं द्वितीय अंग 'यम एवं नियम' मानवीय मूल्यों का निर्धारण करते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह यम के अंतर्गत आते हैं यम, मानवीय मूल्य हैं जो व्यवस्थित, उत्कृष्ट समाज का द्योतक हैं सभी पवित्र ग्रंथों, धर्मों का आधार यही नैतिक मूल्य ही हैं। एवं नियम—शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान इस व्यवस्था को प्राप्त करने एवं उसे बनाये रखने का आधार है।

यदि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन पांचो मूल्यों को वर्तमान समाज में देखना चाहे तो इनमें से कोई भी मूल्य दिखाई नहीं देते या पूरा समाज इसके विपरीत प्रभाव से ग्रसित है। योग को 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' के रूप में परिभाषित किया गया है पर वृत्तियां (विचार) हिंसा, झूठ, चोरी, वासना, एवं लोभ से प्रेरित हों तो शांत चित्त और स्थिर मन की कल्पना कैसे संभव हो सकती है? शारीरिक सौंदर्यीकरण, इंद्रिय सुख, वासना को परोसने वाले विज्ञापन एवं सुविधा सम्पन्नता को सुख एवं सामाजिक प्रतिष्ठा से जोड़ने वाली संकुचित मानसिकता ही प्रायः हिंसा, झूठ, चोरी, का कारण बनती है। उपरोक्त परिभाषा में 'चित्त' शब्द बेहद महत्वपूर्ण है। शरीर से परे जो कुछ भी है वह चित्त कहा गया है। यद्यपि शास्त्रों में 'चित्त' का वर्णन विस्तार से मिलता है। सामान्यतः इसकी व्याख्या मन, बुद्धि, अहंकार के रूप में की जाती है। इसके अतिरिक्त चित्त के विभिन्न स्तर, चित्त की भूमियां, चित्त की अवस्थाएं, पंचकोश आदि मानवीय अस्तित्व के वो पहलू हैं जिनके द्वारा भारतीय वेद, उपनिषद, पुराण, दर्शन एवं आगम आदि हमें सचेत करते हैं कि स्थूल चक्षु से जो कुछ दिखाई देता है वह सत्य नहीं हैं, इसके परे भी मनुष्य में एक आंतरिक सत्ता है जो बाह्य भौतिक मनुष्य के उपरी तल के पीछे छिपी है। और उसे ही खोजना और जानना उसका सर्वोच्च कार्य है। 'आत्मानम् विद्धि' (आत्मा को जानो) भारतीय दर्शन का उद्घोष है।

पर हमने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में एक पक्षीय विकास

किया। भौतिक सम्पन्नता की प्राप्ति और उसमें ही सुख की तलाश, जीवन का लक्ष्य समझा। इसी अज्ञानता के कारण ही मूल्यों का पतन स्पष्ट दिखाई पड़ता है। योगसूत्र में कहा गया है—

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या। पा.यो.

2-5

अर्थात् जो अनित्य है, नश्वर है, अपवित्र है (शरीर, पदार्थ जगत आदि), उसे ही नित्य, शाश्वत एवं पवित्र मान लेना समस्त दुखों का कारण है। यही अविद्या कही गई है। अतः मानव का विकास शरीर के साथ-साथ उसकी चेतना का विकास भी आवश्यक है। इसके लिये वैचारिक संयमन, मूल्यों का संस्कारित होना बेहद आवश्यक है। योग में नियम—शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान क्रमशः विचारों को परिष्कृत एवं संस्कारित करने का कार्य करते हैं।

'शौच' का अर्थ शुद्धिकरण है। यद्यपि इसका संबंध मानसिक शुद्धि से है फिर भी शारीरिक शुद्धि का प्रभाव मन पर पड़ता है। योग में शरीर शुद्धि द्वारा आत्म साक्षात्कार भी संभव है, बताया गया है। आयुर्वेद में भी कहा गया है

समदोशः समाग्नि समधातु मलक्रियः

आत्मेन्द्रिय मनोयुक्त इति स्वास्थ्यमिद्धियते।।

अर्थात् मानसिक स्थिरता में शारीरिक स्वस्थता बेहद आवश्यक है। उपर के श्लोक में प्रथम पंक्ति में जहां शारीरिक संतुलन या शुद्धि करण की व्याख्या की गई है वहीं उसके प्रभाव के रूप में दूसरी पंक्ति में इंद्रियों तथा मन का नियंत्रण भी संभव होता है जो आत्मसाक्षात्कार तक ले जाता है।

'संतोष' से तात्पर्य सुविधा सम्पन्न होने के साथ-साथ मानव—मानव संबंधों को भी समझना आवश्यक है। प्रेम, सम्मान, विश्वास, स्नेह, मार्गदर्शन, श्रद्धा, कृतज्ञता आदि मानव संबंधों की नींव है प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के लिये दूसरों से इन सभी मूल्यों की आपेक्षा करता है योगसूत्र में कहा गया है

जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्। पा.यो 2-23

अर्थात् भोजन, वस्त्र, आवास, आवागमन के साधन, मनोरंजन के साधन सभी किसी भी देश जाति व काल का व्यक्ति हो प्रत्येक की शारीरिक आवश्यकता हैं वैसे ही प्रेम, सम्मान, विश्वास, स्नेह, मार्गदर्शन, श्रद्धा, कृतज्ञता भी प्रत्येक मनस चित्त की आवश्यकता है, चाहे वह जिस देश जाति व काल का व्यक्ति हो। दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति ही संतोष है।

सुविधाएं (दृश्यगत)	मूल्य (अनुभवजन्य)
वस्त्र (Cloths) आवास (Shelter) आवागमन के साधन (Transport) अलंकार (Ornaments) मनोरंजन के साधन (Entertainment) सुविधाओं के लिये प्रकृति के साथ काम करें। work with nature	प्रेम (Love) सम्मान (Respect) विश्वास (Faith) स्नेह (Care) मार्गदर्शन (Guidance) श्रद्धा (Reverence) कृतज्ञता (Gratitude) etc. मूल्यों के लिये मानवीय व्यवहार करें। Behave with human

तप इंद्रिय संयम, अपने कर्म के प्रति निष्ठा एवं ईमानदारी सबसे बड़ा तप है।

स्वाध्याय हमारे वेद, उपनिषदों में प्रचलित गुरु शिष्य परंपरा से स्पष्ट है कि स्वाध्याय का अर्थ स्वयं का अध्ययन है किसी आंतरिक सत्ता की खोज है। वर्तमान परिवेश में स्वयं का विश्लेषण अपने जीवन को सरल बनाने का बेहतर उपाय है स्वयं का आचरण, अपने व्यवहार का मूल्यांकन, अपनी कमजोरी एवं ताकत को पहचानना और उसके अनुसार निर्धारित लक्ष्य की ओर अग्रसर होना ही स्वाध्याय की परिभाषा है।

ईश्वर प्रणिधान, ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण है। एक सर्वोच्च सत्ता पर आस्था प्रत्येक मानव समाज की मौलिक संस्कृति है। प्रत्येक धर्म किसी न किसी रूप में एक दैवीय शक्ति, सुप्रीम पावर पर विश्वास करता है एवं विश्वास करता है कि एकमेव ईश्वर ही पूरे ब्रम्हाण्ड का सृष्टा और स्वामी है ब्रम्हाण्ड ईश्वर की वैश्विक अभिव्यक्ति एवं मानव वैयक्तिक अभिव्यक्ति है मानव में सृष्टि के सभी तत्व अंतर्निहित हैं उसकी देह ब्रम्हाण्ड को मूलरूप में धारण करती है और ईश्वर की सृजनात्मक शक्ति भी उसी के अंदर प्रच्छन्न है। इसी सृजन शक्ति को अपने में खोजना उसकी विशालता को अपने चारों तरफ अनुभव करना मानव जीवन का उद्देश्य है क्योंकि ईश्वर अस्तित्व युक्त(सत्), चैतन्यरूप (चित) एवं आनंदरूप है। 'अखंडमंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्' उसके प्रति सच्ची आस्था एवं विश्वास हममें स्वाध्याय अर्थात् अपने आचरण का विश्लेषण करने की क्षमता को विकसित करती हैं न्याय संगत विश्लेषण निश्चित ही अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक करती है। स्व विश्लेषण एवं कर्मनिष्ठा सबसे बड़ा तप है यही संग्रह प्रकृति में नियंत्रण के साथ-साथ मानवीय व्यवहार को संतुलित कर संतोष व मानसिक शुद्धि का आधार बनता है। अर्थात् आने वाली पीढ़ी में बचपन से ही संस्कार रूप में नियम—ईश्वर प्रणिधान, स्वाध्याय, तप, संतोष, एवं शौच का क्रमशः विकास ही, मानसिक स्वास्थ्य के साथ साथ बाह्य व आंतरिक संतुलन को अर्थपूर्ण करेगा। योगसूत्र में प्रणव (ॐ) को ईश्वर का प्रतीक माना गया है

तस्य वाचकः प्रणवः इसके जाप मात्र से चेतना अंतर्मुखी होती है—

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च। पा.यो. 1-29

परिणामस्वरूप व्याधि (शारीरिक रोग), स्त्यान (मन की जड़ता), संशय, प्रमाद (जानते हुये भी गलत करना), आलस्य, अविरति (अति प्रेम), भ्रांतिदर्शन (काल्पनिक), अलब्धभूमि (प्रारब्ध), अनवस्थित तत्व (अस्थायीत्व) जैसे जीवन में आने वाली बाधाएं (अन्तराय) दूर होते हैं साथ ही उनके सहयोगी दुःख, दौर्मनस्य (मन की दुरावस्था), शारीरिक कंपन, श्वास प्रश्वास विक्षेप (अनियमितता) भी सहजता से दूर होते हैं। सामान्यतः क्रोध, तनाव, अवसाद, भय आदि के क्षणों में इन शारीरिक लक्षणों को स्पष्ट देखा जा सकता है। ॐ की लयात्मक ध्वनि, श्वास का नियंत्रण, आत्म विश्लेषण, एवं अपने आस-पास एक ब्रह्मांडीय उर्जा को महसूस करना, उस पर विश्वास करना या ईश्वरी शक्ति पर विश्वास करना ये हमारी जड़े हैं जिन्हे बचपन से ही सिंचित किया जाना चाहिये। ये सभी हमें स्वयं से जोड़े रखता है, सही निर्णय लेने में मदद करता है, साथ ही विपरीत परिस्थितियों में अपनी ताकत बनाते हैं। सही अर्थों में चित्त वृत्ति निरोध का यही मूलमंत्र है।

1. निष्कर्ष

- 1 पातंजलि योगसूत्र (पा.यो.), डा. पु.वि. करंबेलकर, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमंदिर समिति, लोणावला
- 2 जीवन विद्या— अग्रहार नागराज, जीवन विद्या प्रकाशन श्री भजनाश्रम श्री नर्मदांचल, अमरकंटक
- 3 भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण, डा. संगमलाल पांडेयसेंटल पब्लिकेशन हाउस, इलाहाबाद